श्री शत्रुंजय मुक्ति सम्यग्ज्ञान अभ्यासक्रम

श्री शत्रुंजय-मुक्ति
सा विद्या या विमुक्तये
सम्यग्ज्ञान अभ्यासक्रम

तृतीय वर्ष

शाह गोविन्दजी वीरम फेक्टरी कम्पाउन्ड़, मोंढा रोड, औरंगाबाद

(सम्यग्ज्ञान विशारद) अभ्यास १

❀ शुभाशीर्वाद ❀

तपस्वीरत्न, अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्री गुणोदयसागरसूरिश्वरजी म.सा.

❀ दिव्य कृपा ❀

आगम आराधिका बा.ब्र.प.पू. मुक्तिश्रीजी म.सा.

शासन प्रभाविका प.पू. जयलक्ष्मीश्रीजी म.सा.

मार्गदर्शिका- प्रेरक - सा. डॉ. जयदर्शिताश्रीजी म.सा. M.Sc., Ph.D.

हिंदी अनुवाद - सौ. काश्मीरा लोडाया, सौ. भारतीबेन दंड, सौ. भारती लोडाया

सौजन्य : एक श्रुतभक्त परिवार

स्तोत्र - अर्थ - रहस्य

नमिउण स्तव

नमिऊणपणय सुरगण, चुडामणि किरणरंजिअं मुणिणो;

चलण जु अलं महाभय-पणा सणं संथवं वुच्छं.....१

सडिय करचरण नहमुह, निवुड्डनासाविवन्नलायन्ना;

कुट्ठमहारोगानल, फुलिंग निद्दड्ढसव्वंगा.....२

ते तुह चलणाराहण, सलिलंजलि सेय वुड्ढि उच्छाहा;

वणदवदड्ढा गिरिपा-यवव्व पत्ता पुणोवि लच्छिं ३

-: शब्दार्थ :-

नमिऊण - नमस्कार करके
पणय - नमस्कार करते
सुरगण - देवताओं के समुह के
चुडामणिकिरण - मुकुटमणि के किरणों से
रंजिअं - रंगे हुए
मुणिणो - पार्श्वनाथ भगवान के
चलण जुअलं - चरण युगल
महाभय - बडे भय का
पणासणं - नाश करने वाला
संथवं - स्तवन
वुच्छं - मैं कहूंगा
सडिय - सडे हुए
करचरण - हाथ - पैर
नह-मुह - नाखून, मुख
निवुडनासा - जिनके नाक बैठ गये हैं
विवन्न - नाश हुआ है
लायन्ना - लावण्य
कुट्ठ - कोढ के
महारोगानल - बडे रोग रुपी
फुलिंग - चिनगारी से
निद्दढसव्वंगा - जिनके सभी अंग जल गये हैं
ते - वे
तुह - तुम्हारे
चलणाराहण - चरणों की आराधना संबंधी
सलिलंजली - जल की अंजली के
सेय - सिंचन से
वुड्ढिउच्छाहा - जिनका उत्साह वृद्धि पा चुका है
वणदव - वन के दावानल से
दड्ढा - दग्ध हुए
गिरिपायव - पर्वतो के वृक्ष
व्व - जिस तरह
पत्ता - प्राप्त हुए हैं
पुणोवि - फिर से (पुनः)
लच्छिं - लक्ष्मी को

गाथार्थ : नमस्कार करते देवताओं के समुह के मुकुटमणि की किरणों से रंगे हुए तथा बडे भय का नाश करने वाले श्री पार्श्वनाथ प्रभु के चरण युगल को नमस्कार करके यह स्तवन मैं कहूंगा.....१

जिनके हाथ, पैर, नाखून और मुख सड गये हैं, जिनके नाक चपटे हो (बैठ) गये हैं, जिनका लावण्य विनाश पा गया है, और जिनके सभी अंग कोढ जैसे बडे रोग रुपी चिनगारी से जल गये हैं, ऐसे लोग तुम्हारे चरण की आराधना रुप जल की अंजलि के सिंचन से जिनका उत्साह / शोभा वृद्धि पाये हैं, ऐसे वे वन के दावानल से जल चुके वृक्षों की तरह फिर से पुनः लक्ष्मी (आरोग्य रुपी) को प्राप्त हुए हैं ।

दुव्वाय खुभिय जलनिहि, उब्भड कल्लोल भीसणारावे;
संभंत भय विसंठुल निज्जामय मुक्कवावारे.....४
अविदलिअजाणवत्ता, खणेण पावंति इच्छियं कूलं;
पासजिण चलण जु अलं, निच्चंचिअ जे नमंति नरा....५
खरपवणुद्धुअ वणदव, जालावलि मिलिय सयलदुमगहणे;
डज्झंतमुद्ध मयवहु, भीसणरवभीसणंमि वणे....६
जगगुरुणोकमजुअलं, निव्वाविअसयलतिहुअणाभोअं;
जे संभरंति मणुआ, न कुणई जलणो भयं तेसिं.....७

-: शब्दार्थ :-

दुव्वाय - खराब पवन (हवा)
खुभिअ - क्षोभ पाये हुए
जलनिहि - समुद्र के
उब्भड - उग्र
कल्लोल - तरंगो के
भीसणारावे - जिन में भयंकर शब्द हैं
संभंत - संभ्रम पाकर
भय - डर
निज्जामय - खलासी
(जहाज पर के नौकर)
मुक्कवावारे - जिसमें व्यापार छोडा है
अविदलिअ - टूटा हुआ नहीं
जाणवत्ता - जिनका जहाज
खणेण - क्षण में
पावंति - पाते हैं
इच्छिअं - इच्छित
कूलं - तट, किनारा
पासजिण - पार्श्वनाथ के
चलण जुअलं - चरण युगल को
निच्चं - नित्य
चिअ - निश्चय
नरा - पुरुष
खर - उग्र
पवणुद्धुअ - पवन के कारण
वणदव - वन का दावानल
जालावलि - - ज्वालाओ की पंक्ति के साथ
मिलिय - मिले हुए
सयलदुम - सभी वृक्षों से
गहणे - गहन
डज्झंत - जलती
मुद्ध - मुग्ध
मयवहु - मृगलीओं के
भीसणरव - भयंकर शब्दो से
भीसणंमि - भयंकर
वणे - वन में
जगगुरुणो - जगत के गुरु पार्श्व नाथ के
कम जुअलं - चरण युगल
निव्वाविअ - सुखी किया है
सयल - सभी
तिहुअण - तीन जगत के
आभोअं - विस्तार
संभरंति - स्मरण करते हैं
मणुआ - मनुष्य
कुणइ - करता नहीं
जलणो - अग्नि
तेसिं - उनको

गाथार्थ :- जो पुरुष श्री पार्श्वनाथ प्रभु के चरण युगल में हमेशा नमन करते हैं, वे उग्र पवन से क्षोभ पाये समुद्र की उत्तुंग तरंगो के भयंकर शब्दो से और संभ्रम से, डर से विव्हल, बने हुए खलासीओ ने भी जिसमें स्वयं का व्यापार छोड दिया है, उसमें भी जहाज को अखंडित रखकर इच्छित किनारे को (तट को) क्षणभर में प्राप्त करते हैं ४/५

जो मनुष्य जगतगुरु पार्श्वनाथ के सर्व जगत के विस्तारों को सुखी करने वाले चरण युगल को याद करते हैं, उन्हें उग्र पवन के कारण जलते वन के दावानल की ज्वालाओं की पंक्ति के साथ मिल गये सभी वृक्षों से गहन और जलती मुग्ध मृगलीओं के भयंकर शब्दो से भयभीत करने वाले वन में अग्नि उन्हें भयभीत नहीं करता....६/७

विलसंतभोगभीसण, फूरिआरुण नयण तरल जीहालं;
उग्ग भुअंगं नवजलय, सत्थहं भीसणायारं.....८
मन्नंति कीडसरिसं, दुर परिच्छुढ विसम विसवेगा;
तुह नामक्खर फुडसिद्ध-भंत गुरुआ नरा लोअे.....९
अडवीसु भिल्ल तक्कर-पुलिंद्द सद्दुल सदभीमासुं;
भयविहुर वुन्नकायर, उल्लूरिअ पहिअ सत्थासु....१०
अविलुत्त विहवसारा, तुह नाह पणाम मत्तवावारा;
ववगय विग्धा सिग्धं, पत्ता हियइच्छियं ठाणं.....११

-: शब्दार्थ :-

विलसंत - विलास वाले
भोग - फन / देह
भीसण - भयंकर
फुरिअ - चपल
अरुण - लाल
नयण - नयन
तरल - चंचल
जीहालं - जीभवाले
उग्ग - उग्र
भुअंगं - सर्प
नवजलय - नये मेघ (बादल)
सत्थहं - समान
भीसणायारं - भयंकर आकारवाले
मन्नंति - मानते हैं
कीडसरिसं - कीडे के समान
परिच्छुढ - टाला है
विसम - उग्र
विसवेगा - जहर का वेग
तुह - तुम्हरा
नामक्खर - नाम के अक्षर का
फुड - स्फूट / प्रगट
सिद्ध - सिद्ध
मंत - मंत्र
गुरुआ - बडे
नरा - मनुष्य
लोअे - लोक में

अडवीसु - अटवी में
भिल्ल - भील
तक्कर - तस्कर / चोर
सद्दद्दुल - सिंह के
सद - शब्दों से
भीमासुं - भयंकर
भय-विहुर - भय से
वुन्न - खेद पाये हुए
कायर - कायर लोगों ने
उल्लरिय - लूटा है
पहिअ - मुसाफिरों को
सत्थासु - जिसमें साथ
अविलुत्त - लूटे नहीं गये
विहवसारा - जिनका श्रेष्ठ वैभव
तुह - तुम्हें
नाह - हे नाथ
पणाममत्त - प्रणाम मात्र
वावारा - व्यापरा
ववगय - गये हैं
विग्घा - जिनके विघ्न
सिग्घ - सत्वर / शीघ्र
पत्ता - प्राप्त हुआ है
हिय इच्छियं - हृदय से इच्छित
ठाणं - स्थान को

गाथार्थ :- हे प्रभु ! जो पुरुष इस लोक में आपके नाम के अक्षर का प्रगट सिद्धमंत्र (पार्श्वनाथ ऐसा मंत्र) से बडे हुए हैं, वे जहर के विषम वेग को दूर टाल कर, विलासवाले फन अथवा भयंकर चपल और लाल नेत्रवाले, चंचल जीभवाले, नये बादल (मेघ) जैसे और भयंकर आकारवाले उग्र सर्प को एक कीडे जैसा मानते हैं ८/९

हे नाथ! आपको प्रणाम मात्र करने वाले व्यापारी पुरुष, भील, चोर, वनचर और सिंह के शब्दों से भयंकर इस भय से विव्हल, खेद पाये हुए और कायर लोको ने जिसमें मुसाफिरों के साथ को लूटा है, ऐसी भयंकर अटवी (वन) में उनका वैभव नहीं लूटा गया है और उनके विघ्न नाश हो गये हैं, ऐसे उन्होंने हृदय में इच्छित स्थान को प्राप्त किया है ।

जिनशासन के प्रभावक आचार्य भगवंत

इस अवसर्पिणीकाल के अंतिम केवली

९) जंबूस्वामी

राजगृही नगरी.....

प्रभु महावीर के चरणस्पर्श से पावन हुई पुण्यवती भूमि.....

धर्म एवं धन से समृद्ध भूमि.....

दान-शील से महकती नगरी.....

इस नगरी में बसते थे एक करोडपति श्रेष्ठिवर्य....

जैन धर्मानुरागी श्री ऋषभदत्त सेठ.... पत्नी का नाम था धारिणी.....

शील-सदाचार से शोभायमान आदर्श परिवार में पुत्र रत्न का जन्म हुआ.....

सर्वत्र आनंद - आनंद छा गया..... जन्म महोत्सव मनाने में आया.....

बालक का नाम रखने में आया जंबूकुमार.....सौभाग्यशाली सुपुत्र था.....

जंबूकुमार सोलह वर्ष के हुए.....पुण्यानुबंधी पुण्य का महान उदय जागृत हुआ.....

विहार करते-करते श्रीसुधर्मास्वामी को वंदन करने तथा दर्शन कर देशना सुनने नगर के बाहर के उद्यान में जाने लगे.....

जंबूकुमार भी सुधर्मास्वामी को वंदन कर देशना सुनने लगे..... सुधर्मास्वामी की मीठी मधुर देशना सुन जंबूकुमार वैराग्य पाये..... सुधर्मास्वामी को वंदन कर संयम लेने की अभिलाषा व्यक्त की.... अभी माता-पिता की अनुमति लेकर आता हूँ ऐसा कहकर घर की ओर जाने को निकले....मार्ग में तोप का गोला एकदम नजदीक से गुजरने से मुश्किल से बचे, जीवन की क्षणभंगुरता सोचते हुए वापस लौटे.... सुधर्मास्वामी के पास आकर सम्यक्त्व सहित ब्रह्मचर्यव्रत के पच्चक्खाण लेकर घर आये ।

माता-पिता को सुधर्मास्वामी के देशना की तथा अपने वैराग्य की बात बतायी ''हे मात-तात! अब क्षणभर भी संसार में रहने की इच्छा नहीं है, मुझे दीक्षा की अनुमति प्रदान कीजिये ।'' जंबूकुमार की बात सुन माता-पिता ने कहा ''हे वत्स ! तू तुझसे सगाई की हुई आठ श्रेष्ठि पुत्रियों के साथ विवाह कर हमारे मनोरथ पूर्ण कर ।'' जंबूकुमार ने माता-पिता को समझाने का बहुत प्रयास किया परंतु माता-पिता ने जंबू के विवाह का आग्रह नहीं छोडा । माता-पिता का अत्यंत आग्रह जान मैं विवाह करके तुरंत दीक्षा लूंगां ऐसा अपने माता-पिता व कन्याओ के माता-पिताओं को बता दिया ।

कन्याओं के माता-पिताओं ने कन्याओं को समझाने का प्रयास किया परंतु कन्यायें मानती नहीं है । कन्याओं का आग्रह देखकर कन्याओं के माता-पिता कन्याओं का जंबूकुमार के साथ धामधूम से विवाह करते हैं । जंबुकुमार के माता-पिता भी प्रसन्न होते है, आनंद पाते हैं । संसारी जीव मोह से ग्रस्त होते है इसलिये संसारवृद्धि के निमित्तो से वे प्रसन्न होते है ।

आठ कन्याओ के साथ विवाह करके जंबूकुमार अपने घर में आते है । आठो कन्याये अनेक युक्तिओ एवं दृष्टांतो से जंबूकुमार के पास संसार के सुखो का वर्णन करती हैं । संसार का मोह पैदा करने का प्रयास करती हैं । उनकी वाणी सुनने के बाद जंबूकुमार अमृत से भी अधिक मीठी मधुर परंतु वैराग्यमय वाणी से आठो कन्याओ को प्रतिबोधित करते हैं । संसार की भयानकता और असारता समझाते हैं । संसार दुःखमय, पापमय एवं स्वार्थमय है इसका ऐसा अद्‌भुत वर्णन करते है की जो सुनकर रात्रि में चोरी करने आये विंध्यराजा के पुत्र प्रभव और पांच सौ चोर भी प्रतिबोध पाते हैं ।

प्रतिबोध पाकर वैराग्यवासित होकर दीक्षा लेने जब सब तैयार होते हैं तब जंबूकुमार अपनी अरबो की जायदाद तथा आठ कन्याओ के माता-पिता की ओर से दहेज में मिली निन्यानवे करोड की संपति शुभ मार्ग में वापरते है, सात क्षेत्र में देते है, दीन दुखियो को देते है और ५२६ लोगो के साथ श्रीसुधर्मास्वामी के पास दीक्षा लेते हैं ।

दीक्षा लेकर ज्ञान ध्यान में मस्त बनते हैं, अनुक्रम से द्वादशांगी का अभ्यास करते हैं । सुधर्मास्वामी उनकी अपनी पाट पर स्थापना करते हैं । उत्कृष्ट तप से तपते हुए एवं श्रेष्ठ ध्यान में रहते हुए जंबुकुमार अनेक कर्मो की निर्जरा करते है । किसी पावन क्षण में सारे घनघाती कर्मो का चूरा करके केवलज्ञान एवं केवलदर्शन प्राप्त करते हैं । बहुत समय तक केवली रुप में ग्रामनुग्राम विचरण करते है और उपदेश देकर अनेक भव्यातमाओं को तारते हैं ।

जंबूकुमार सोलह वर्ष कुमार रुप में रहते है फिर दीक्षा लेकर बीस वर्ष तक छद्मस्थ पने से तथा चुम्मालीस वर्ष केवलीपने से विचरते हैं । अस्सी वर्ष की आयुष्य भोगकर अपनी पाट पर अपने मुख्य शिष्य प्रभवस्वामी की स्थापना करके श्रीवीरप्रभु के निर्वाण को चौंसठ वर्ष हुए तब जंबूस्वामी मोक्ष जाते हैं ।

जंबूस्वामी के मोक्षगमन के साथ इस भरत क्षेत्र में, इस अवसर्पिणी काल में दस वस्तुओं का विच्छेद हुआ । ये दस वस्तुये निम्न अनुसार है - १) मनःपर्यवज्ञान २) परमावधिज्ञान ३) पुलाक लब्धि ४) आहारक शरीर ५) क्षपक श्रेणि ६) उपशम श्रेणि ७) जिनकल्प ८) १.परिहार विशुद्धि चारित्र २. सूक्ष्मसंपराय चारित्र ३. यथाख्यात चारित्र (ये तीन चारित्र) ९) केवलज्ञान एवं १०) मोक्षगमन ।

इसीलिये मरुदेवामाता ने इस अवसर्पिणी काल में इस भरतक्षेत्र के मानवो के लिये जो मुक्तिद्वार खोला था वो जंबूस्वामी के निर्वाण से बंध हुआ । आत्मा सिद्ध-बुद्ध, नीरंजन, निराकार बना ।

प्रथम श्रुतकेवली

(२) श्री प्रभवस्वामी

वीर निर्वाण से ३० वर्ष पहले का समय था.....

विंध्याचल पर्वत की गोद में जयपुर नगर बसा हुआ था.....

सुख-शांति तथा समृद्धि से भरपूर नगरी थी.....

विंध्यराजा वहां राज्य करते थे.....

विंध्यराजा को दो पुत्र थे.... उस में प्रभव बडा पुत्र था.... प्रभव चतुर, होशियार, पराक्रमी था.... राजकुमार के योग्य सारे गुण उसमें थे.... प्रभव ने अच्छी खासी लोकप्रियता प्राप्त की थी..... परंतु उसका नसीब कुछ दो कदम आगे था..... वो माता-पिता के प्रेम को और आशीर्वाद को प्राप्त नहीं कर सका । माता-पिता के मन में उससे ज्यादा प्रेम, स्नेह छोटे बेटे के लिये था और दोनों की इच्छा थी की वो ही आगे जाकर महाराजा बने.....

राजकुमार प्रभव को उस बात की गंध लगते ही उसका मन उलझन में पड गया.... बहुत मनोमंथन के बाद उसने गांव और राजमहल का त्याग किया..... जंगल का मार्ग पकडा । जंगल में उसने अपनी टोली जमायी, चार सौ निन्यानवें साथियों को जमा किया..... पांच सौवां वो खुद उस टोली का नायक बना । सभी को चोरी की कला सीखायी तथा खुद ने दो देवी विद्यायें प्राप्त की, इन दो विद्याओ में एक थी अवस्वापिनी और दूसरी थी तालोद्घाटिनी । जहां चोरी करने जाता वहां प्रथम अवस्वापिनी विद्या से गाढ निद्रा फैलाता और फिर बाद में तालोद्घाटिनी विद्या से सहजता से चाहे जैसा ताला भी खोल डालता । आसपास के गांवो में बहुत सी चोरियाँ करके प्रभव और उसके साथी हाहाकार फैलाने लगे, लोग त्राहीमान पुकारने लगे ।

प्रभव उसके साथियों को लेकर बडी चोरी व लूट के इरादे के साथ राजगृही नगरी मे पहुंचा । वहां उसे समाचार मिला की आज राजगृही नगरी के ऋषभदत्त श्रेष्ठि के सुपुत्र जंबूकुमार का विवाह आठ-आठ कन्याओं के साथ हुआ है, समाचार मिलते ही प्रभव विचार करते है ''आज ऋषभदत्त श्रेष्ठि के वहां ऐसी चोरी करुं... ऐसा माल लुटुं की मुझे जीवन में दूसरी बार चोरी ही नहीं करनी पडे.... यह मेरी अंतिम चोरी बन जाय।''

मानव भावना करता है परंतु उसे पता नहीं होता की भावना किस तरह से साकार, सफल होने वाली है ।

मध्यरात्रि में प्रभव और उसके साथी ऋषभदत्त के सात मंजीला महल के पास पहूंच गये । साथियों को बाहर व्यवस्थित खडा करके प्रभव महल में प्रवेश करता है, वहां अवस्वापिनी विद्या आजमाता है । नीचे सब बराबर निद्राधीन हो गये यह जानकर उपर चढा.... सावधान रहकर सातवी मंजिल पर पहुंचता है । वहां उसके

कान में बाते होती हो ऐसा आवाज आता है, फिर से अपनी विद्या का उपयोग किया परंतु परिणाम शुन्य.... जहां से आवाज आ रहा था वहां पहूंचकर दिवार को कान लगाया, अंदर में हो रही वैराग्य की बाते कानो से टकराते ही प्रभव को झटका लगा..... मोहनिद्रा में से मानो उसकी आत्मा जाग गयी ।

जहां करोडो नहीं अरबो की सम्पति है, आठ-आठ कन्याये भोग की प्रार्थना कर रही है और यह श्रेष्ठि पुत्र त्याग,वैराग्य की बाते कर रहा है, संसार छोड साधु बनने की उसे लगन लगी है, और मैं इस त्यागी के घर चोरी करने आया हूँ..... सचमुच ! इस श्रेष्ठिपुत्र को धन्य है,..... और मुझे लाख लाख बार धिक्कार है ।

आठो कन्यायें स्वामीनाथ के साथ संयम लेने तैयार हुई, तब प्रभव भी जंबूकुमार के पास पहुंच गया । उनके चरणो में गिर गया..... तुम्हें धन्य है..... तुम्हारे यौवन को धन्य है.... तुम्हारे जीवन को धन्य है.... तुम्हारा यौवन और जीवन सफल है । मैं तो चोर हूं, तुम्हारे घर बडी चोरी करके आज से चोरी ही नहीं करनी पडे ऐसा सोच रहा था । तुम्हारी वाणी सुनकर, तुम्हारी वैराग्य से भरी वाणी ने मेरा हृदय.... मेरा जीवन चुरा लिया है । सच में आज की मेरी चोरी अंतिम चोरी बनकर रहेगी, मैं भी आपके साथ दीक्षा लूंगा । तब तक तो प्रभव के सारे साथी आ पहुंचे..... ''हम भी हमारे स्वामी के साथ संयम पथ पर विचरण करेंगे ।''

जंबूकुमार ने सबके भावो का स्वागत किया । सभी को सुंदर धर्मोपदेश देकर उनकी संयम भावना में वृद्धि की ।

वि.सं. पूर्व ४७० वर्ष में वीर शासन के पांचवे गणधर.... प्रथम पट्टधर श्रीसुधर्मास्वामी के पास प्रभव ५०० के साथ दीक्षा ली, प्रभव ने दीक्षा ली तब वे तीस बरस के थे ।

जंबूस्वामी के पाट पर प्रभवस्वामी आये । वि.सं पूर्व ४०६ वर्ष में वो जंबूस्वामी के पट्टधर बने, आपश्री महावीर के शासन के प्रथम श्रुतकेवली थे । प्रथम श्रुतधर, चौदहपूर्वी युगप्रधान पुरुष थे । वि.सं. पूर्व में ३९५ में ११ वर्ष का युगप्रधान पद और १०५ वर्ष की संपूर्ण आयुष्य पूर्ण कर देवलोक को प्राप्त किया ।

कोटि-कोटि वंदन हो प्रभवस्वामी के चरण में ।

तृतीय पट्टधर, दशवैकालिक सूत्र रचयिता

(३) श्रीशय्यंभवसूरीश्वरजी महाराज

प्रभवस्वामी ने शासन की डोर संभाली तब उनकी उम्र चौरायनवें (९४) वर्ष की थी । इस उम्र में भी आपश्री सुंदर आराधना एवं शासन प्रभावना करते हुए एकदम शुद्ध संयम पालन करते हुए विचरण कर रहे थे । शरीर थक रहा था और अपने पाट के लिये योग्य पट्टधर अपने समुदाय में दिख नहीं रहा था, तो क्या करना ? यह विकराल प्रश्न उन्हैं सता रहा था । वीरशासन की गरिमा टिकी रहे ऐसा पट्टधर लाना कहां से ? जिसके उसके हाथ में शासन की डोरी सौपीं जाय तो लाभ के बजाय हानि ज्यादा होती है । बहुत मनोमंथन के बाद पूज्यपाद प्रभवस्वामी महाराज ने श्रुतज्ञान का उपयोग कर योग्य पट्टधर हेतु शोध का प्रारंभ किया.... पट्टधर की शोध करते हुए उनकी नजर राजगृही नगरी के शय्यंभव नामक ब्राह्मण के उपर स्थिर हुई । जन्म से भले ब्राह्मण है..... परंतु एक समर्थ विद्वान है.... महापंडित है..... वत्स गोत्रवाला है और वेद में निष्णांत है, फिलहाल इस महापंडित को अपने ज्ञान में उन्होंने प्राणी हिंसामय यज्ञ करते देखा । प्रभवस्वामी ने शय्यंभवभट्ट को प्रतिबोध देने का निर्णय किया.....

अपने पास के दो साधुओं को उन्होंने समझाकर यज्ञमंडप में भेजा । यज्ञमंडप में आये हुए साधुओं का वहां अपमान करने में आया । हुए अपमान को सहन करके भी साधुओं ने शय्यंभव भट्ट के पास जाकर कहा ''अहो कष्टं, अहो कष्टं, तत्वं न ज्ञायते परम् ।'' अर्थात ''अहो अहो यह कैसी कष्ट की बात है की कोई तत्व को जानता नहीं।''

शय्यंभव भट्ट जैन साधुओ के मुख से यह बात सुन विचारमग्न बने..... चिंतन करने लगे.... जैन साधु मरणांत कष्ट आये तो भी असत्य वचन नहीं बोलते है..... तो उन्होंने यह क्या कहा ? मैं जो कर रहा हूं..... मेरे गुरुदेव जो करवा रहे है, उसमें तत्व नहीं है, यदि यह तत्व नहीं है तो तत्व क्या है ? तत्व कहाँ है ? सत्य क्या है ? सत्य कहां है ? सत्य और तत्व को जानने की जिसे उत्सुकता लगन लगी है ऐसे शय्यंभव भट्ट हाथ में खुली तलवार लेकर गुरुदेव के पास पहुंचे..... तलवार बताते हुए गुरु को कहा ''सच बताओ सत्य क्या है ? तत्व क्या है ? सम्यक्त्व क्या है ?''

तलवार देखकर भयभीत हुए गुरु ने कहा '' यज्ञस्तंभ के नीचे सोलहवें जैन तीर्थंकर श्रीशांतिनाथ प्रभु की मूर्ति की स्थापना की है, उसके प्रभाव से ये सारी क्रियाये निर्विध्न रुप से चल रही है और सत्य तत्वरुप एक जैन धर्म ही है.....''

फिर यज्ञस्तंभ के नीचे से रत्नमय श्रीशांतिनाथ प्रभु की मूर्ति बतायी । श्रीशांतिनाथ प्रभु की प्रतिमा देख प्रतिबोधित हुए शय्यंभवभट्ट यज्ञविधि और सगर्भा पत्नी को छोडकर श्रीप्रभवस्वामी के पास पहुंचे । प्रभवस्वामी ने शय्यंभव को जैनधर्म का तत्वज्ञान समझाया, दया की महिमा बतायी, धर्म का मूल दया है यही आत्मकल्याण के लिये श्रेष्ठ मार्ग है । सत्य समझते ही क्षणभर का भी विलंब किये बिना शय्यंभवभट्ट प्रभव स्वामी के चरणो में झुक पडे, संयम ग्रहण किया । शय्यंभवभट्ट ने दीक्षा ली तब उनकी उम्र २८ वर्ष की थी ।

संयम लेकर शय्यंभवमुनि ने तप,जप की आराधना के साथ ज्ञानसाधना की धून रमायी..... ज्ञान की आराधना करते हुए शय्यंभवमुनि चौदह पूर्व के पारगामी (ज्ञाता) बने । शास्त्राभ्यास करवा कर, योग्य संस्कार देकर श्रीप्रभवस्वामी ने शय्यंभवमुनि को आचार्य पदवी देकर अपनी पाट पर स्थापित किया । वि.सं. पूर्व ३९७ में यह घटना हुई ।

शय्यंभवभट्ट ने दीक्षा ली तब उनकी पत्नी गर्भवती थी । अन्य स्त्रियां गर्भ के बारे में पुछ परख करती तब वो स्त्री कहती ''मयणं'', मयणं यानि कुछ है ।

बालक का जन्म हुआ तो सब ने नाम डाला ''मनक'' ।

मनक जब आठ साल का हुआ तब माता को पूछा ''हे माता ! मेरे पिताजी कहां है ?''

माता ने कहा ''वत्स ! तू अभी गर्भ में ही था तब तेरे पिता शय्यंभव भट्ट जैन दीक्षा लेकर जैन साधु बन गये है ।''

माता की बात सुन मनक पिताजी की शोध में निकला । शोध करते हुए उसे चंपानगरी में शय्यंभवसुरि मिले । उनके सानिध्य में रह जैनधर्म और साधुजीवन की समझ प्राप्तकर जैन दीक्षा अंगीकार कर मनकमुनि बने । श्रुतोपयोग देने से शय्यंभवसुरि ने मनकमुनि की आयु सिर्फ छः महिने शेष है यह जाना । इतने अल्प समय में मनक क्या शास्त्राभ्यास कर पायेगा ? शास्त्राभ्यास के बिना उसका कल्याण उसकी आत्मा का उद्धार कैसे होगा ? ऐसा सोच कर मनकमुनि के जीवनोद्धार के लिये चौदह पूर्व में से उद्धार करके ''श्रीदशवैकालिक सूत्र'' की रचना की । दशवैकालिक सूत्र सारे सूत्रो का सार है, मुनिजीवन की स्थिरता के लिये आचार पालन का श्रेष्ठ ज्ञान उसमें समाया हुआ है । छः मास तक श्रीशय्यंभवसूरि ने मनकमुनि को दशवैकालिक सूत्र का अभ्यास कराया, अप्रमत्त रुप से आराधना करायी । इससे छः मास के बाद आराधक बने मनकमुनि स्वर्ग में गये । मनकमुनि के कालधर्म से शय्यंभवसूरि की आंख में से अश्रु ढल पडे । शिष्यो द्वारा कारण पूछने पर उन्होंने अपने संसारीपने के पुत्र रुप का तथा उसके अल्प आयुष्य वगैरह का वृतांत कह सुनाया तथा कहा की ''वो अल्प आयुष्य में भी शुद्ध चारित्र का पालनकर समाधि सहित सद्गति को प्राप्त कर गया इसलीये मुझे हर्ष के अश्रु आये थे ।''

गुरुदेव की बात सुन शिष्यो ने कहा ''गुरुदेव ! हमको आपश्री ने यह बात पहले से बतायी होती तो हम भी उसके साथ ज्यादा स्नेह वगैरह दर्शाकर ज्यादा अच्छा वर्तन करते थे ।''

गुरुदेव ने कहा ''नहीं कहने से ही तुम्हारे जैसे तपोवृद्धो की सेवा का लाभ उन्हें मिला और इसीलिये सद्गति प्राप्त कर पाये ।''

कार्य सिद्ध हो जाने के पश्चात श्रीदशवैकालिक सूत्र को पूर्व में समा (मिला) देने की भावना कर रहे शय्यंभवसूरि को श्री श्रमणसंघ ने निवेदन किया की ''गुरुदेव ! इस पांचवे आरे में अल्प आयुष्य वाले और अल्प बुद्धिवाले मुनिवरो आदि को उपयोगी होगा इसलीये इस सूत्र को अब कायम के लिये रहने दो ।

गुरुभगवंत ने निवेदन को मान्य किया और इस सूत्र को स्थिर रखा ।

श्रीशय्यंभवसूरि पूर्व में से श्रुतसार का संकलन करने वाले प्रथम जैनाचार्य थे, आपश्री महाप्रभावक युगप्रधान आचार्य थे ।

शय्यंभवसूरि अठ्ठावीस वर्ष गृहस्थरुप में, ग्यारह वर्ष मुनिरुप में तथा तैवीस वर्ष तक आचार्यपद पर रहकर शासनप्रभावना कर अपनी पाट पर यशोभद्रसूरि को स्थापित कर बांसठ वर्ष की आयु भोगकर वीर निर्वाण से अठयानवें (९८) वर्ष में स्वर्ग सिधारे ।

ये महापुरष तो स्वर्ग सिधारे परंतु आज भी उनका उद्धरित किया हुआ ''श्रीदशवैकालिक सूत्र'' जिनशासन का श्रृंगाररुप है । साधु जीवन को पाने से पहले और बाद में भी यह प्रत्येक मुमुक्षु के संयम जीवन का आधारस्तंभ है । पांचवे आरे के अंत तक यह आगम रहेगा..... जीव को शिव के मार्ग का परिचय कराता रहेगा..... अनेको का तारणहार बनेगा । एक ''मनक'' ही नहीं अनेको का पथदर्शक, जीवनोद्धारक ऐसे ''दशवैकालिक सूत्र'' के रचयिता शय्यंभवसूरि के चरणो में कोटि-कोटि वंदन ।

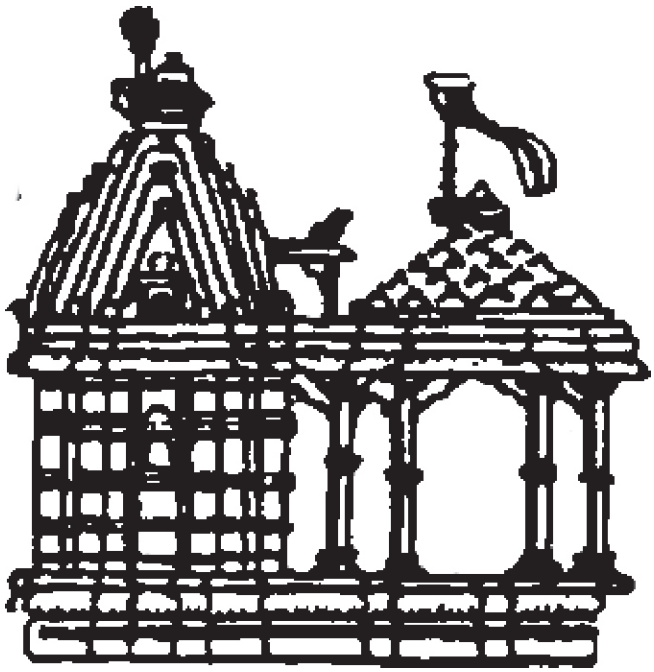

श्री दंडक प्रकरण - १

श्री गजसार मुनि

जिन शासन श्रुतज्ञान का महासागर है... चाहे उतना जानो, समजो-पढो परंतु वह ज्ञान कभी भी खत्म (अर्थात् पुर्ण) नहीं होता । आज के समय की अपेक्षा से हमारा आयुष्य इतना अल्प है की उतने समय में श्रुत सागर का बिंदुमात्र भी ज्ञान पाना कठीन है ।

हमें तो पंच प्रतिक्रमण हो जाय तो अभिमान आ जाता है, की मुझे तो पंचप्रतिक्रमण फटाफट आता है । नहीं.. इतने मात्र से संतोष मानना नहीं है । पंचप्रतिक्रमण के अभ्यास के बाद जीवविचार और नवतत्व पढना है । इन दोनों के अभ्यास से जिनवचनों पर श्रद्धा मजबूत बनती है और ज्यादा से ज्यादा ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा होती है । चार प्रकरण में जीव-विचार और नवतत्व के बाद तीसरे नंबर पर ''श्री दंडक प्रकरण'' का स्थान है । यहाँ पर हमे यह ''श्री दंडक प्रकरण'' सीखने के लिये पुरुषार्थ करना है ।

दंडक याने क्या ?

दंडक प्रकरण नाम सुनते ही मन में प्रश्न उठता है दंडक याने क्या ? इस दंडक प्रकरण में हमें क्या जानने को मिलेगा ? इस बात का समाधान करते हुए कहते है -

दण्डयते जीवा यास्मिन् स दंडक ।

जीव जिसके कारण दंडित होते है, वह दंडक कर्मो के कारण जीव जिसमें दुःखी हो, दंडित हो उसे दंडक कहते है । आत्मा तो सदा आनंद में रहने के स्वभाववाला है, फिर भी उसे विविध गति, जाति के रुप में दंडित होना पडता है । कभी एकेन्द्रिय में, कभी विकलेन्द्रिय में, कभी त्रस में, कभी स्थावर में , कभी नरक में तो कभी निगोद में इतना ही नहीं मनुष्य बनना भी दंड ही है । जीव विचार में कथित ५६३ जीव के भेदों का २४ दंडक में समावेश करने में आता है । इन सबका हम क्रमशः विस्तारपूर्वक विचार करेंगे ।

''नमिऊं चउवीस जिणे, तस्सुत्त वियारलेस देसणओ ।
दंडग पअेहिं ते च्चिय, थोसामि सुणेह भो भव्वा ।।१।।

चौबीस जिनेश्वरों को नमस्कार कर, उनके सिद्धान्त विचार को लेशमात्र कहने से दंडक के पदोंद्वारा उन जिनेश्वरों की मैं निश्चय से स्तवना करता हूँ । हे भव्यात्माओं ! वह तुम सुनो -

१) मंगलाचरण - ''नमिउं चउवीस जिणे'' इस पद के द्वारा चौबीस जिनेश्वर भगवंतो को नमस्कार कर कार्यकी (ग्रंथ की) सफलतामें कोई भी विघ्न न आये इसके लिये मांगलिक करने में आया है ।

२) विषय - ''दंडग पणहिं'' इस पद से दंडक पद के आधार से जिनेश्वर परमात्मा के आगम संक्षिप्त में समझाना है, ऐसा विषय बताया है ।

३) संबंध - ''तस्सुत वियार'' उनके (जिनेश्वरों के) सिद्धान्त विचार के साथ इस दंडक का संबंध बताया है । सिद्धान्त के ज्ञान से दंडक का संबंध है ।

४) प्रयोजन - 'लेस देसणओ'' भव्य जीवों को संक्षिप्त में ज्ञान करा देने का प्रयोजन है । उन्हें पदार्थोंका बोध कराकर मोक्षकी अभिलाषा जागृत करना है ।

५) अधिकारी - ''सुणेह भो । भव्वा !'' इस पद के द्वारा इस ग्रंथ के अभ्यास के लिये भव्य जीव अधिकारी है ।

इस तरह प्रथम गाथा में जिनेश्वरों को नमस्कार करने के द्वारा और जिनेश्वरों के स्तुति द्वारा आपके समक्ष ग्रंथका मंगलाचरण, विषय, संबंध, प्रयोजन और अधिकारी की बात स्पष्ट कर दी है ।

हम भी जिनेश्वर परमात्मा को नमस्कार कर हमारे ज्ञान के लिये पुरुषार्थ आरंभ कर आत्मिक विकास प्राप्त करें ।

चौबीस दंडक

नेरइआ असुराइ, पुढवाइ बेइंदियादओ चेव ।
गब्भय तिरिय मणुस्सा, वंतर जोइसिय वेमाणी ।।

नारकी, असरकुमारादि, पृथ्वीकायादि, बेइन्द्रियादि, गर्भज, तिर्यंच, मनुष्य व्यंतर, ज्योतिषी, वैमानिक ये चौबीस दंडक है ।

यहाँ पर चौबीस दंडक की गिनती करने में आइ है, वह निन्मोक्त है -

१) सात नारकी के	एक दंडक
२) असुरादि भवनपतियों के	दस दंडक
३) पृथ्वीकायादि स्थावर के	पाँच दंडक
४) विकलेन्द्रिय के	तीन दंडक
५) गर्भज तिर्यंच के	एक दंडक
६) मनुष्यों के	एक दंडक
७) व्यंतर के	एक दंडक
८) ज्योतिषीयों का	एक दंडक
९) वैमानिकों का	एक दंडक

कुल मिलाकर चौबीस दंडक है ।

गति अपेक्षा से विचार करने पर -

नारकी का	एक दंडक
तिर्यंच के	नौ दंडक
मनुष्य का	एक दंडक
देवताओं के	तेरह दंडक

इस तरह कुल चौबीस दंडक होते है ।

चौबीस द्वार

संखित्तयरी उ इमा, सरीर-मोगाहणा य संघयणा;
सन्ना संठाण कसाय, लेस इंदिय दु समुग्घाया ।।३।।
दिट्ठी दंसण नाणे, जोगु-वओगो-ववाय चवण-ठिइ;
पज्जत्ति किमाहारे, सन्नी गइ आगइ वे अे ।।४।।

चौबीस द्वार रुप अति संक्षिप्त संग्रहणी इस तरह है -

शरीर, अवगाहना, संघयण, संज्ञा, संस्थान, कषाय, लेश्या, इन्द्रिय, दो भेद से समुद्घात, दृष्टि, दर्शन, ज्ञान, अज्ञान, योग, उपयोग, उपपात, च्यवन, स्थिति, पर्याप्ति, किमाहार, संज्ञा, गति, आगति, वेद ।

पहली गाथा में चौबीस तीर्थंकरों के स्तवना की बात बतायी, उसी संदर्भ में अगले दुसरी गाथा में चौबीस दंडक बताये । अब यहाँ तीसरी और चौथी गाथा में चौबीस द्वार बताये है । ये चौबीस द्वार नीचे मुजब है -

१) शरीर द्वार
२) अवगाहना द्वार
३) संघयण द्वार
४) संज्ञा द्वार
५) संस्थान द्वार
६) कषाय द्वार
७) लेश्या द्वार
८) इन्द्रिय द्वार
०९) समुद्घात द्वार
१०) दृष्टि द्वार
११) दर्शन द्वार
१२) ज्ञान द्वार
१३) अज्ञान द्वार
१४) योग द्वार
१५) उपयोग द्वार
१६) उपपात द्वार
१७) च्यवन द्वार
१८) स्थिति द्वार
१९) पर्याप्ति द्वार
२०) किमाहार द्वार
२१) संज्ञा द्वार
२२) गति द्वार
२३) आगति द्वार
२४) वेद द्वार

गुणस्थान क्रमारोह

आधार ग्रंथ - गुणस्थान क्रमारोह पू.आ. रत्नशेखरसूरि

गुण !

जीवन विकास में उनका अद्‌भूत योगदान है... जिनके बिना जीवनबाग महकता नहीं... सूना-सूना बन जाता है .... ऐसे गुणों का जीवन विकास में विशिष्ट महत्व है ।

जहाँ जहाँ अपूर्व गुण विशेष का जो आविर्भाव होता है, अर्थात् गुणविशेष की प्राप्ति होती है, उसे गुणस्थान कहते है ।

जैसे जैसे ज्यादा से ज्यादा गुणों की प्राप्ति होती है, वैसे वैसे जीव धर्म अध्यात्म के उंचे उंचे लक्ष्य को प्राप्त करता जाता है । ऐसे गुणों के रहने का स्थान वह गुणस्थान कहलाता है । आत्मविकास की इच्छा रखनेवाले हर साधक को गुणस्थानों का ज्ञान अति आवश्यक है । आत्मिक विकास के ये सोपान है । श्रीमद् रत्नशेखरसूरि कृत ''गुणस्थान क्रमारोह'' ग्रंथ के आधारपर संक्षिप्त में गुणस्थान संबंधी ज्ञान-जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे ।

गुणस्थान क्रमारोह, हत मोहं जिनेश्वरम् ।
नमस्कृत्य गुणस्थान, स्वरुपं किंचिदुच्यते ।।१।।

ग्रंथकार महर्षि ग्रंथ के प्रारंभ पूर्व मांगलिक कर रहे है । विघ्न निवारण करने के लिये एवं शांतिपूर्वक ग्रंथ की पूर्णाहुति हो इसलिये जिनेश्वर परमात्मा को नमस्कार कर रहे है ।

राग-द्वेष को जीतने वाले जिन कहलाते हैं । ऐसे सामान्य ''जिनों '' में (केवलीयों में) इन्द्र के समान वे ''जिनेन्द्र'' ''जिनेश्वर'' कहलाते है । ये जिनेश्वर कैसे होते है ? यह बताते हुए कहते है, की चौदहवे गुणस्थान का जो आरोह क्रम जिससे उन्होने मोहनीय कर्म का नाश किया ऐसे जिनेश्वर होते है । मोहनीय कर्म के नाश से जिन्होंने गुणस्थानकों में आरोहण किया है, ऐसे जिनेश्वर भगवंतो को नमस्कार कर संक्षेप में गुणस्थान का स्वरुप बतायेंगे ।

अब चार गाथाओं के द्वार चौदह गुणस्थानक के नाम बताते है -

चतुर्दश गुणश्रेणि स्थानकानि तदादिमम् ।
मिथ्यात्वाख्यं द्वितीयन्तु स्थानं सासादनाभघम् ।।२।।
तृतीयं मिश्रकं, तुर्यं सम्यग्दर्शनमव्रतम् ।
श्राद्धत्वम्पचमंषष्ठं, प्रमत्त श्रमणाभिधम् ।।३।।
सप्तमं त्वप्रमत्तंचा पूर्वकरणमष्टमम् ।
नवमचानिवृत्याख्यं दशमं सूक्ष्मलोभकम् ।।४।।
एकादशं शांत मोहं, द्वादशं क्षीण मोहकं ।
त्रयोदशं सयोगाख्यं मयोगाख्यं चतुर्दशम् ।।५।।

भव्य जीवों को सिद्धिरुपी महल में चढने के लिये चौदह गुणस्थानकों की श्रेणि याने सीडी-सोपान श्रेणि कही है । जिस तरह मनुष्य सीडी पर चढकर अपने मकान में जा सकते है, वैसे ही चौदह गुणस्थान की श्रेणि से जीव मुक्तिपद अथवा सिद्धिपदको प्राप्त करते है -

यहाँ चार गाथाओं से चौदह गुणस्थानों के नाम बताये है -

१) मिथ्यात्व गुणस्थान
२) सास्वादन गुणस्थान
३) मिश्र गुणस्थान
४) अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थान
५) देशविरति गुणस्थान
६) प्रमत्तसंयत गुणस्थान
७) अप्रमत्तसंयत गुणस्थान
८) अपूर्वकरण गुणस्थान
९) अनिवृत्तिकरण गुणस्थान
१०) सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान
११) उपशान्त मोह गुणस्थान
१२) क्षीण मोह गुणस्थान
१३) सयोगी केवली गुणस्थान
१४) अयोगी केवली गुणस्थान

चौदह गुणस्थानकों के नाम बताने के बाद एक-एक गुणस्थान का विशेष विवरण देते है ।

१) मिथ्यात्व गुणस्थान

जहाँ मिथ्यात्व का अस्तित्व है ऐसा मिथ्यात्व युक्त गुणस्थान वह ''मिथ्यात्व गुणस्थान'' जानना । यह मिथ्यात्व दो प्रकार का है ।

अदेवा गुर्व धर्मेषु यादेव गुरु धर्मधीः ।
तन्मित्यात्वं भवेद्वयक्त मव्यक्तं मोह लक्षणम् ।।६।।

मिथ्यात्व दो प्रकार का है - १) व्यक्त मिथ्यात्व २) अव्यक्त मिथ्यात्व ।

कुदेव-कुगुरु और कुधर्म के विषय में जो देव-गुरु-धर्म की बुद्धि होना वह व्यक्त मिथ्यात्व है । ऐसी बुद्धि संज्ञी पंचेंद्रिय को ही होती है । अव्यक्त मिथ्यात्व मोहरुप है याने अज्ञान तुल्य जानना ।

मिथ्यात्व गुणस्थान किसलिये ?

मिथ्यात्व अच्छा नहीं है, फिर उसकी गिनती गुणस्थान में क्यों की गई है ? इसका जवाब समझाते है -

अनाद्यव्यक्त मिथ्यात्वं, जीवेस्त्येव सदापरम् ।
व्यक्त मिथ्यात्व धीप्राप्ति गुणस्थान तयोच्यते ।।७।।

अनादिकाल से एकेन्द्रिय जीव को अव्यक्त मिथ्यात्व होता है । परंतु निगोद से निकलकर जीव जब संव्यवहार राशि में आता है तब वह जीव व्यक्त मिथ्यात्व को प्राप्त करता है । उसे मिथ्यात्व गुणस्थान कहते है । एक बार व्यक्त मिथ्यात्व को स्पर्शित जीव पुनश्च निगोद में जाता है तो वह अव्यक्त मिथ्यात्व को प्राप्त करता है, फिर भी उसे मिथ्यात्व गुणस्थान होता है । परंतु जो जीव कभी भी अव्यवहार राशि में से निकलकर व्यवहार राशि में आया ही नहीं है और व्यक्त मिथ्यात्व को स्पर्शित ही हुआ नहीं है, उसे गुणस्थानक ही नहीं होता ।

पाँच प्रकार का मिथ्यात्व

अभिग्गहिअमणाभिग्गहियं तहाभिनिवेसिअं चेव ।
संसइअमणाभोगं मिच्छतं पंचहा होइ ।।

अभिग्राहिक, अनभिग्रहिक, अभिनिवेशिक, सांशायिक और अनाभोगिक ये पांच प्रकार के मिथ्यात्व है । इसमें से पहले चार व्यक्त मिथ्यात्व है जबकी अंतिम अनाभोगिक मिथ्यात्व अव्यक्त मिथ्यात्व है ।

१) परंपरासे चले आये धर्म को ही सच्चा मानना वह **''अभिग्रहिक मिथ्यात्व''** है ।

२) सभी धर्म सच्चे है ऐसी समज अथवा बुद्धि वह **अनभिग्रहिक मिथ्यात्व** है ।

३) मैं जो कहता हूँ (मुझे जो अच्छा लगता है) वही धर्म सच्चा है ऐसी बुद्धि वह **अभिनिवेशिक मिथ्यात्व** है ।

पदार्थों का स्वरुप जिस तरह कहा है वैसा ही होगा अथवा अन्य रीत से होगा ऐसी शंका वह **''सांशयिक मिथ्यात्व''** है ।

अस्पष्ट चैतन्यवाले असंज्ञी जीवों को जो मिथ्यात्व मोहनीय का उदय होता है वह ''अनाभोगिक मिथ्यात्व है ।

ठाणांगसूत्र के वृत्ति में दस प्रकारका मिथ्यात्व कहा है, वह निम्नोक्त है -

१) अधर्म में धर्म बुद्धि २) धर्म में अधर्म बुद्धि ३) उन्मार्ग में मार्ग बुद्धि ४) मार्ग में उन्मार्ग बुद्धि ५) अजीव में जीव बुद्धि ६) जीव में अजीव बुद्धि ७) असाधु में साधु बुद्धि ८) साधु में असाधु बुद्धि ९) अमुक्त में मुक्त बुद्धि १०) मुक्त में अमुक्त बुद्धि ।

मिथ्यात्व दूषण

मिथ्यात्व में क्या दोष है ? यह बताते हुए कहते है -

मद्यमोहात्यथा जीवो न जानाति हिताहितम् ।
धर्म्माधर्म्मो न जानाति तथा मिथ्यात्वमोहितः ।।८।।

नष्ट हो गया है ज्ञानरुपी चित्त जिनका ऐसे मनुष्यादि जीव मदिरा के उन्माद से, नशे से हित, अहित कुछ भी जानते नहीं उसी तरह मिथ्यात्व से मोहित हुए जीव धर्म अधर्म को जानते नहीं ।

जन्मांध व्यक्ति वस्तु के रम्य,अरम्य, अच्छे, खराब स्वरुप को जानते नहीं.... अथवा अंधःकार से भरी कोठी में रहे वस्तु को जैसे व्यक्ति जान नहीं सकते उसी तरह मिथ्यात्वसे मोहित जीव धर्म-अधर्म को जानता नहीं ।

मिथ्यात्व की स्थिति

मिथ्यात्व की स्थिति याने समय बताते है । मिथ्यात्व कितना समय रह सकता है ? हम पुरुषार्थ से उस मिथ्यात्व में से बहार किस तरह आ सकते हैं ?

अभव्याश्रित मिथ्यात्वे, नाद्यनन्ता स्थितिर्भवेत् ।
साभव्याश्रित मिथ्यात्वे, नादि सान्ता पुनर्मताः ।।९।।

जीवराशि दो प्रकार की है - १) भव्य और २) अभव्य । अभव्य जीवों की मिथ्यात्व की स्थिति अनादि अनंत है । भव्य जीवों के लिये अनादि सान्त मिथ्यात्व की स्थिति है ।

प्रथम गणधर श्री गौतमस्वामी विनयपूर्वक पूछते हैं , '' हे करुणानिधान ! इस गुणस्थान से कौनसा गुण प्राप्त हुआ ?'' तब अनंत उपकारी प्रभु महावीर स्वामी ने कहा - ''हे गौतम ! मिथ्यात्व के योग से.... कर्म से प्रेरित जीव चार गति-चौबीस दंडक और चौर्यासी लाख जीवयोनि में परिभ्रमण करता है, पर कहीं भी शाता प्राप्त नहीं कर सकता ''

उपशम सम्यक्त्वानादि काल संभूत मिथ्या कर्म्मोपशान्ति तः ।
स्यादौपसमिकं नाम जीवे सम्यक्त मादितः ।।१०।।

जीव के लिये अनादि काल से उत्पन्न हुए मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के उपशांत होने से ''उपशम सम्यक्त्व'' होता है । उपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति ग्रांथिभेद से होती है । उपशम सम्यक्त्व दो प्रकार का है । १) अंतरकरण से प्राप्त उपशम सम्यक्त्व और २) उपशम श्रेणि में रहे हुए जीव का उपशमसम्यक्त्व ।

उपशम सम्यक्त्व प्राप्त करने के लिये जीव तीन करण करता है १) **यथाप्रवृत्तिकरण** २) **अपूर्व करण** ३) **अनिवृत्तिकरण** ये तीनो करण आगे चौथे गुणस्थानक में विस्तार से वर्णित है । यहाँपर जीव अपूर्वकरण कर के सम्यग्दर्शन को स्पर्श करता है । अनिवृत्तिकरण के पहले की यह अवस्था है । ग्रंथिभेद करता है, परंतु तीन पुंज नहीं करता । मिथ्यात्व मोहनीय के पुद्गल उदय में आते है । उन्हे खपाता है । उदय में नहीं आते उन्हें उपशमित करता है, और औपशमिक सम्यक्त्व को प्राप्त करता है । इस सम्यक्त्व को **अंतरकरण सम्यक्त्व** कहते है, यह सम्यक्त्व एक ही बार होता है ।

उपशम सम्यक्त्व श्रेणिवाले जीवों के उपशम सम्यक्त्व की बात करते है । मिथ्यात्व मोहनीय एवं अनंतानुबंधी चार कषायों के उपशमन से श्रेणीगत उपशम सम्यक्त्व प्राप्त होता है । ये भी सास्वादन का कारण है ।

सास्वादन गुणस्थान

सास्वादन गुणस्थानक का स्वरुप बताते है.....

एकस्मिन्नुदितेमध्या, च्छान्तानन्तानुबन्धिनाम् ।
आद्यौपशमसम्यक्त, शैलमौलेः परिच्युत्तः ।।११।।
समयादावलिषट् कं, यावन्मिथ्यात्व भूतलम् ।।
नासादयति जीवोयं, तावत् सास्वादनो भवेत् ।।१२।।

उपशमसम्यक्त्वी जीव ने जो अनंतानुबंधी चार कषाय उपशमित किये हैं, उनमें से एक भी कषाय का जब उदय होता है, तब कषायों के उपशम से उपशम सम्यक्त्व प्राप्त किया था, उस उपशम सम्यक्त्वरुपी पर्वत के शिखर पर से जीव का नीचे पतन होता है । और जब तक मिथ्यात्वरुपी भूमि को स्पर्शता नहीं है, तब तक वह छः

आवालिका समय तक ''सास्वादन गुणस्थान'' कहलाता है । सास्वादन गुणस्थान भव्य जीवों को ही होता है । तथा जिनका अर्धपुद्गल परावर्त संसार बाकी रहा है ऐसे जीव को ही होता है । सास्वादन से गिरते हुए भी जीव को सम्यक्त्व का अंश होता है । यह बात दृष्टांत द्वारा समजाते हुए कहते है की किसी ने दूधपाक का भोजन किया और उसे वमन हुआ, वमन के समय उसके गले में दूधपाक की मिठास और स्वाद का अनुभव रहता है, उसी तरह मिथ्यात्व गुणस्थानक पर जाने से पहले जीव सम्यक्त्व का वमन करता है अतः क्षणभर सम्यगदर्शन का स्वाद जीव अनुभव करता है, इस गुणस्थानक पर रहा जीव १०१ प्रकृतिका बंध करता है, उदय में १११ प्रकृति होती है, उदिरणा १११ प्रकृति की है एवं सत्ता में १४७ प्रकृति होती है ।

श्री गौतमस्वामी विनयपूर्वक प्रभु महावीरस्वामी को पूछते है - ''हे देवाधिदेव ! इस गुणस्थानक को कौनसा गुण प्राप्त हुआ ?''

अनंत उपकारी प्रभु महावीरस्वामी कहते है - हे गौतम ! वह जीव कृष्णपक्षी में से शुक्लपक्षी हुआ, अब उसका केवल अर्ध पुद्गलपरावर्तन काल बाकी रहा''

गोचरी

गोचरी यानि जैन साधु-साध्वीजी भगवंतो की आहार लेने की विधि, गोचरी शब्द का अर्थ है गाय जैसे सभी जगहो से थोडा - थोडा घास खाती है वैसे ही साधु भी सभी के घरो से थोडा-थोडा आहार लेकर जीवन निर्वाह करता है । अब हम जानते है की साधु आहार किसलिए लेता है ? इसका जवाब देते शास्त्र कहते है की छः कारणो से साधु आहार करता है.... ये छः कारण निम्न अनुसार है .....

१) संयम के निर्वाह के लिए साधु आहार करता है । २) क्षुधा वेदना को (भूख को) शांत करने आहार करता है । ३) ईर्यासमिति क शुद्ध पालन हेतु साधु आहार करता है ।) जीव-रक्षा करने हेतु साधु आहार करता है । ५) धर्म-ध्यान या शुभध्यान में स्थिरता टिकाये रखने हेतु साधु आहार करता है । ६) बडों का विनय करने तथा उनकी वैयावच्च करने हेतु साधु आहार करता है ।

इन छः कारणो के सिवाय साधु आहार नहीं करता । अब आहार लेने के लिये साधु निकले तब गुरु को वंदन कर आज्ञा लेकर, ईर्यासमिती के उपयोगपूर्वक एक घर से दूसरे घर आहार लेने जाता है । इस विधि की बात समझाते हुए दशवैकालिक सूत्र में कहा है -

जहा दुमस्स पुप्फेसु, भमरो आवियइ रसं;
णय पुप्फं किलामेइ, सो य पीणेइ अप्पयं

यही बात वृद्धिविजयजी महाराज गुजराती में बताते है -

न करे कुसुम किलामणाजी विचरंतो जीम तरु वृंद;
संतोषे वळी आतमाजी मधुकर ग्रही मकरंद.
तेणी परे मुनि घर घर भमेजी लेतो शुद्ध आहार,
न करे बाधा कोईनेजी दीअे पिंड ने आधार.

भंवरा जिस तरह एक फूल से दूसरे फूल पर बैठता है और फूल को कुछ भी तकलीफ न हो वैसे उसमें से मध को ग्रहण करता है, इसी तरह मुनि किसी भी गृहस्थ को तकलीफ न हो ऐसे आहार लेकर संयम निर्वाह करता है ।

उपर बतायी हुई आहार विधि में सभी बातों का समावेश हो जाता है, जिसका हम विस्तार से विवेचन करेंगे ।

साधु को गोचरी, पाणी का लाभ देने की विनंती करना यह श्रावक का कर्तव्य है जब श्रावक विनंती करता है तब साधु को ''वर्तमान जोग'' कहने की विधि है । साधु निश्चित जवाब नहीं देता वर्तमान जोग यानि

गोचरी के लिये निकलेगें तव, उस समय जैसे संजोग होगें वैसा करेंगे । ऐसा करने से साधु बहुत दोषो से बच जाता है । साधु हम तुम्हारे यहां आयेंगे ऐसा बतावे तो साधु के निमित्त से आहार बनाये, छःकाय की विराधना करे यह सब दोष साधु को लगता है पर बताये बिना श्रावक के यहां से अनुकूल आहार ले तो उभय पक्ष (साधु एवं श्रावक) दोनों को लाभ होता है ।

परंतु वर्तमान संजोगो में श्रावक जीवन की दिनचर्या विचित्र हो जाने से उसी तरह श्रावको में साधु जीवन की जानकारी न होने से साधु-श्रावक दोनो के जीवन में कितने ही दोषो का सेवन हो जाता है इसलीये श्रावको को खास जागृत रहने की जरुरत है । गांव में साधु-साध्वीजी भगवंत बिराजमान हो तो श्रावको के घर में योग्य समय पर आहार पानी का जोग होना चाहिये । श्रावक के द्वार अभंग कहलाते है, जब भी साधु-साध्वीजी भगवंत पधारे तो लाभ मिल ही जाय ।

वर्तमानकाल में संयुक्त कुटुंब कम होते गये.... सुबह उठने का अनियमित हो गया.... शाम को चौविहार करने वाले घटते गये... गरम पानी पीने वाले बहुत कम रह गये.... उसी तरह संघयणबल घटने से साधु-साध्वीजी भगवंत एकासणे की परम्परा को निभा नहीं सके.... इन विविध कारणो से.... ''वर्तमान जोग'' शब्द का प्रयोग घटता गया और श्रावक की ओर से साहेब कब पधारेंगे बताओ न ऐसी मांग बढती गयी पर श्रावको को साधु-जीवन समझकर उनकी साधना में सहायक बनने..... साधु भगवंत आये या नहीं आये पर यथायोग्य समय पर आहार पानी का जोग रखे अथवा स्पष्ट कहे तो **श्रावक सच्चा श्रावक जीवन जीने लगे, प्रतिदिन नवकारसी चौविहार करे, गरम पानी पीने लगे तो साधु का अनायास लाभ मिलता रहे और निर्दोष गोचरी मिलने से साधु का चारित्र शुद्ध बने उसी तरह उसकी आराधना में भी वेग आता है ।** कारण जैसा अन्न वैसा मन, आहार वैसा ओडकार (डकार)... इन सब बातों को ख्याल में रखकर शुद्ध आहार की शोध करते हुए साधु को कैसे घरो में गोचरी के लिये जाना यह बात भी शास्त्रकारो ने प्रकाशित की -

गेह गणिकातणा परिहरोजी जीहां गया चल चित्त होय
हिंसक कुळ पण तेम तजोजी पाप तिहां प्रत्यक्ष जोय
सुझता आहारनो खप करोजी.....

गणिका आदि के, हिंसाचार में मानने वाले ऐसे घरो में गोचरी जाने का निषेध बताया खानदान, चारित्रवान, सुसंस्कारी घरो में आहार लेने जाने की साधु को नसीहत देने में आयी है । जैसा कुल होता है वैसा घर में व्यवहार होता है... वैसे भाव होते है.... इन सब की असर गोचरी पर पडती है... आहार की असर आहार लेने वाले साधु के मन पर पडती है.... उसकी साधना एवं आराधना पर पडती है.... कितनी सूक्ष्म दृष्टि थी....अपने केवली भगवंतो के पास एवं पूर्वाचार्यो के पास ! साधु की साधना के प्रति कैसी जागृति थी उनके

पास । पापी व हिंसक वातावरण की असर में यदि साधु का मन रंग जाय.... चित चलित हो जाय तो संयम की साधना मुश्किल बन जाय.... मन चंचल है.... ऐसे कुलो में बार बार जाने से कदाचित संयम भ्रष्ट बन जाय इसीलिये ऐसे वातावरण से साधु को दूर रहने की नसीहत देने में आयी है ।

अकबर बादशाह का दरबार भरा हुआ था...अकबर बादशाह आनंद में थे.... उन्होंने राजसभा में विद्वानो, पंडितो की ओर नजर करके एक प्रश्न रखा । ''सभाजनो! इस सामने जल रहे दीपक की ओर नजर करो, चांदी का शुभ्र दीया है, इसमें शुद्ध श्वेत घी है, इसकी ज्योति सुवर्णमय है पर इस ज्योति में से जमता काजल काला है, किसलिये ?

सभाजन अजब-गजब का पर सच्चा सवाल सुन उलझन में पड गये । जवाब पानी के लिये बहुत दिमागमारी की पर जवाब मिल नहीं रहा था, राजा की नजर चारो ओर घूम गयी, दरबार में शांति छा गयी, राजा को जवाब चाहिये था, कोई जवाब देने तैयार नहीं था, सभी जगह से निराश बनी राजा की नजर बीरबल पर स्थिर हुई और बीरबल ने कहा ''जहांपनाह ! इच्छा होगी तो जरुर जवाब दूंगा पर सवाल बहुत आसान है, सरल है ।''

बादशाह की नजर सभी जगह घूमकर पुनः बीरबल पर स्थिर हुई, बीरबल अपने स्थान पर से खडे हुए राजा को सलाम भर कर कहा ''बादशाह ! संसार का नियम है ''जैसा अन्न वैसी डकार'' दीपक भले ही चांदी का श्वेत हो, दीपक भले ही शुद्ध एवं शुभ्र घी से जलता हो, दीपक की ज्योति भले सुवर्णमय हो, पर जहांपनाह ! दीपक अंधकार को खाता है, अंधकार काला होता है, इसलीये इसके डकार स्वरुप निकलता काजल (धुंआ) काला ही होगा न !''

अकबर बादशाह सहित सारे सभाजन बीरबल की बुद्धि की प्रशंसा करने लगे ।

सचमुच हम देह में जो डालते है, उसकी बहुत ज्यादा असर हमारी वाणी, विचार एवं वर्तन पर होती है, इसीलिये ज्ञानी महात्माओ ने गोचरी की क्रिया में साधु को सावधान बनने की बात की है ।

आहार के लिये निकला साधु कैसे-कैसे घरो का त्याग करे उसकी बात समझाने के बाद कहते है की -

ठार घुंअर वरसादनाजी जीव विराहण टाळ ।
पग पग ईर्या शोधताजी, हरिकायादिक भाळ ।
सूझंता आहार नो खप करोजी....

बरसात बरसती हो, धुंध पडी हो, ओले वगैरह पडते हो तो साधु गोचरी के लिये नहीं निकले....

अपनी क्षुधा को मिटाने के लिये किसी भी जीव को तकलीफ नहीं देने की उत्कृष्ट भावना यही इसके पीछे का अनोखा रहस्य है ।

धुंध (कोहरा) हो, बरसात हो, ओले हो, ये सब पानी के ही विविध प्रकार है, और इसके एक बिंदु में, कण में असंख्य एकेन्द्रिय अपकाय के जीव है, इन जीवो को अभयदान देने साधु सदैव तैयार ही होता है । समता से साधु क्षुधा (भूख) को सहन करे, स्वाध्याय आदि में मन को जोड दे ।

पर सावधान ! परमात्मा का मार्ग एकांत का नहीं अनेकांत का है ।

कदाचित कोई बालसाधु हो, कोई वृद्ध हो, कोई बीमार हो, कोई ऐसा जीव हो की जिसका क्षुधा वेदनीय के उदय में समता टिकती न हो.... आराधना में मन नहीं लगता हो, असमाधि होती हो, तो परमात्मा के शासन में उसके लिये भी अपवाद का मार्ग बताया गया...

जब बरसात धीमी पडे, जीव विराधना की संभावना कम हो तब दो गरम कामळी ओढकर नजदीक के घरो में से उपयोगपूर्वक गोचरी वोहराकर आवे ।

प्रभु के शासन में आत्म-समाधि को मुख्य रखने में आया है, जो जो करना है वो इसे टिकाये रखने के लिये करना है, इसीलिये अपवाद मार्ग बताया है, मुंबई जैसी नगरीयोंमें तीन तीन - चार चार दिन कभी मेघराज बरसते है, तब ऐसे प्रसंगो में श्रावको को योग्य उपयोग रखना पडता है, बरसात ज्यादा हो अथवा घर दूर हो तब टीफिन में गोचरी लाकर वोहराने का व्यवहार हाल में प्रचलित है ।

यथायोग्य समय पर, विचार करके सभी की समाधि को लक्ष में रखकर लिये जाते निर्णय शासन के लिये हितकारक ही होते है ।